प्रथम अध्याय

समकालीन उपन्यास :: सर्वेक्षण-संदर्भ

प्रथम अध्याय

समकालीन उपन्यास :: सर्वेक्षण-संदर्भ

1.0 भूमिका

साठोत्तरी या समकालीन उपन्यास आधुनिकवादी विचार धाराओं से ओत- प्रोत है । इस काल के उपन्यासकारों ने व्यक्ति और समाज के सापेक्षिक संबंधों को चित्रित कर उसका विश्लेषण आधुनिकतावादी विचारों से किया है । मोहन राकेश ने अपने उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' (१९६१) में आस्था विहीन समाज, अनिश्चय की स्थिति में फँसे इन्सान और उसकी समस्याओं को अभिव्यक्ति देने का सफल प्रयास किया है । उनके अनुसार प्रेम कोई शाश्वत-उदात्त मूल्य नहीं रह गया है । वैयक्तिक महात्वाकांक्षायें और आधुनिक जीवन की सफलतायें प्रेम की आंतरिक संबंधों में दरारें पैदा करती हैं । पाश्चात्य संस्कृति के परिवेश में जिस सुख की तलाश उपन्यासों में की गई है, वह आज के संदर्भ में कटु सत्य है । यह रोमानी प्रेम से अलग प्रेम की आधुनिकतावादी परिकल्पना है ।

आधुनिकताबोध के अनेक उपन्यासकार है जिसमें भीष्म साहनी (तमस), राज कमल चौधरी (मरी हुई मछली), श्री कान्त वर्मा (दूसरी बार), गिरिराज किशोर (युगलबंदी), नरेश मेहता (यह पथबंधु था), श्रीलाल शुक्ल (राग दरवारी), निर्मल वर्मा (लाल टीन की छत), मन्नू भंडारी (आपका बंटी), डा. राही मासूम रजा (टोपी शुक्ला), मो. गुलशेर शानी (कालाजल), मेहरुन्निसा परवेज (पासंग), नासिरा शर्मा (कागज की नाव) आदि उल्लेखनीय है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के केन्द्र में 'हिन्दी की समकालीन मुस्लिम महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों का अनुशीलन' है । अध्ययन के केन्द्र में एक ओर जहाँ उपन्यास विधा है तो दूसरी ओर विशिष्ट काल - जिसमें हिन्दी की मुस्लिम महिला उपन्यासकारों द्वारा उपन्यास लेखन हुआ है । अतः इस अध्याय में समकालीन का अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा, आधुनिकता, समकालीनता एवं इससे संबंधित सभी महत्त्वपूर्ण विषयों का वर्णन किया जायेगा ।

1.1 समकालीन का अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा

'समकालीन' शब्द का निर्माण सम और कालीन के योग से हुआ है । 'समकालीन' शब्द का अर्थ 'ज्ञान शब्दकोश' के अनुसार "एक समय मे रहने या होने वाले (कंटेंपोरेरी), समसामयिक" [1] है । 'नालंदा विशाल शब्द सागर' में "जो एक समय मे हुए हो " [2] उसे समकालीन माना गया है । 'हिन्दी शब्द सागर' में समकालीन का अर्थ - "जो (दो या कई) एक ही समय में हो । एक ही समय में होने वाले । जैसे - तुलसीदास जहाँगीर के समकालीन थे ।"[3] दिया गया है ।

रामचन्द्र वर्मा की मान्यता है कि "जो (दो या कई) एक ही समय में हुए हों । कन्टेंपोरेरी ।"[4] समकालीन कहलाता है । समकालीन के बारे में संस्कृत - हिन्दी शब्दकोश में लिखा है "समवयस्क, समसामयिक ।"[5] अतः

---

1. श्रीवास्तव, मु. संपादक. ज्ञान शब्दकोश. पृ. 815.
2. नवलजी. संपादक. नालंदा विशाल शब्द सागर. पृ. 1404.
3. दास, श्या. संपादक. हिन्दी शब्द सागर. दसवाँ भाग, पृ. 4959.
4. वर्मा, रा. संपादक. प्रामाणिक हिन्दी शब्दकोश. पृ. 1095.
5. आपटे, वा. शि. संस्कृत-हिन्दी कोश. पृ. 1073.

किसी व्यक्ति, वस्तु या कृति की समकालीनता को निश्चित करने के लिए तत्कालीन समय को देखना आवश्यक है । इस संदर्भ में डॉ. पुष्पपाल सिंह का कहना है, "आज १९६० ई. के बाद के साहित्य के लिए 'समकालीन' संज्ञा प्रचलन में आ चुकी है, केवल आन्दोलनबद्ध दृष्टि उसे स्वीकार नहीं कर रही है । आधुनिक नवलेखन के संदर्भ में इन शब्दों को 'आधुनिकता' के समानधर्मी रुप में स्थापित करने की चेष्टा हुई है । किन्तु इसमें वह अर्थविस्तृति नहीं आ पाई जो 'आधुनिकता' में है । हम समकालीनता को काल परक मानते हुए १९६२ ई. के पश्चात समस्त साहित्य-सृजन के लिए उसका प्रयोग कर सकते हैं ।"[1] "डॉ. पुष्पपाल सिंह की मान्यता 'समकालीन' को कालपरक सिद्ध करती है लेकिन यह बात एकांगी है इसलिए कि समकालीन में काल तो महत्त्व रखता है ही लेकिन उसके अलावा सम, 'समान' या 'एक जैसे' का भी उतना ही महत्त्व है जितना की काल या समय का है ।"[2] वस्तुतः समकालीन वह होता है जो काल खंड के साथ-साथ एक जैसा होता है, सम-समान होता है ।

अतः कोई व्यक्ति, वस्तु या कृति किसी दूसरे व्यक्ति, वस्तु या कृति के समकालीन है तो उसमें दोनों का समय तथा साम्य एक जैसा होता है । अर्थात किसी एक ही समय में रहने वाले तथा किसी न किसी दृष्टि से एक जैसे परिलक्षित होने वाले को समकालीन कहना उचित है ।

1.1.1 आधुनिकता

व्यक्ति की वह मानसिकता जिसमें अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और जड़ परंपराओं के विरुद्ध सख्त विद्रोह मौजूद हो, आधुनिकता कहलाता है ।

---

1. सिंह, पु. समकालीन कहानी युग बोध का संदर्भ. पृ. 84.
2. चव्हाण, अ. समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष. पृ. 96.

आधुनिक, आधुनिकता और समकालीनता मानवता के विकास क्रम की सीढ़ियाँ है । भारतीयों के आधुनिक बनने के पीछे औपनिवेशिक शक्तियों की प्रबल भूमिका रही है । आधुनिक शिक्षा पद्धति तथा उन्नीसवीं सदी के सुधारवादी आन्दोलनों के कारण भारतीय जनमानस में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ जिससे उनमें नई सोच और चिंतन का विकास हुआ ।

भारतीयों को आधुनिक बनाने में विज्ञान का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है । अठारहवीं सदी तक भारतीयों का पारलौकिक सत्ता पर इतना विश्वास था कि उनमें उससे परे सोचने की हिम्मत नहीं थी । उनके लिए ईश्वर और धर्म ही सर्वोपरि थे । किन्तु विज्ञान ने उनके इन विश्वासों का खंडन कर तर्कपूर्ण ढंग से सोचने के लिए विवश कर दिया । भारतीयों को आधुनिक बनाने वाले तत्वों में विभिन्न दर्शनों का प्रभाव एक प्रमुख तत्व रहा है । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पाश्चात्य दर्शन के क्षेत्र में दो महान क्रांतिकारी दार्शनिकों कार्ल मार्क्स एवं मनोविश्लेषक फ्रायड का आविर्भाव हुआ ।

मार्क्स (१८०८-१८८३) की दृष्टि में अगर कोई ईश्वर है तो वह 'काम' अर्थात 'वर्क' ही है । जो काम करता है उसका जीवन स्वर्ग है और जो आलसी या कामचोर है, उसका जीवन नरक बन जाता है । अतः स्वर्ग और नरक किसी ईश्वर के वश में नहीं अपितु यह मनुष्य की कर्म शक्ति पर निर्भर करता है । फलतः इस दर्शन ने भारतीय जनजीवन को ही नहीं बल्कि विश्व की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिदृश्य को भी बदल दिया ।

दूसरा दर्शन सिगमंड फ्रायड (१८५६-१९३८) का था । उनके दो प्रमुख सिद्धांत है - 'दि इंटरप्रेटेशन ऑफ ड्रीम' एवं 'थ्री एस्सेस ओन द थियोरी ऑफ सेक्सुएलिटि' । इन दोनों सिद्धांतों ने विश्व के सामने बहुत से

नए प्रश्न प्रस्तुत कर दिए जिसे नए सिरे से विचार करने के लिए बुद्धिजीवियों को विवश होना पड़ा । इन दर्शनों ने मानव मन को तथा उनके व्यक्तित्व एवं व्यवहार को वैज्ञानिक ढंग से समझने एवं परखने की राह को आसान बना दिया । साहित्य पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ा । जिसके कारण साहित्य में चरित्र-चित्रण के एक नए दौर का समावेश हुआ । अतः "आधुनिक होने का मतलब है नए जीवन बोध को ग्रहण करना । पर आधुनिकता उससे भी कुछ आगे की कड़ी है वह एक प्रक्रिया है जिसमें निरंतरता है । अतीत के परिपेक्ष्य में वर्तमान की समझ और भविष्य की दृष्टि आधुनिकता में वर्तमान है ।"[1]

1.1.2 समकालीनता का सीमांकन

साधारण लोगों की अपेक्षा रचनाकार अधिक संवेदनशील एवं तार्किक होते हैं । वे अपनी सूक्ष्म दृष्टि से समाज की असंगतियों को भाँप कर उसके बीच फँसे विवश, लाचार एवं असहाय व्यक्तियों को केन्द्र में रखते हुए विचार-विमर्श करते हैं । उनके सामने जहाँ एक ओर वर्तमान की जटिलता है तो वहीं दूसरी ओर अतीत का अनुभव एवं भविष्य की आकांक्षायें । इस आत्म मंथन से जो एक अंतर्दृष्टि विकसित होती है, वही समकालीनता है । समकालीनता अतीत के अनुभव के साथ वर्तमान के संघर्ष का सुखद संयोग है जिसके मूल में आस्था और सर्जनात्मकता है । समकालीनता के निर्माण में समकालीन परिवेश का बेहद महत्त्वपूर्ण स्थान है । यहाँ समकालीन परिवेश का आशय साठोत्तर भारतीय परिवेश से है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के साहित्य में आमलोगों का मोहभंग, निराशा एवं हताशा का चित्रण हुआ है । इस परिवेश की

---

1. मोहनन, एन. समकालीन हिन्दी उपन्यास. पृ. 18.

भीषणता को बढाने वाली कई घटनाऐं १९६० ई. के बाद घटित हुई है । जैसे - १९६२ ई. में भारत-चीन युद्ध, १९६४ ई. में कम्युनिस्ट पार्टी का विभाजन, १९६५ ई. और १९७१ ई. में पाकिस्तान से युद्ध, देश में अन्न की भारी कमी और भूखमरी, नक्सल आन्दोलन, १९७५ ई. में आपातकाल की घोषणा, १९७७ ई. में जनता पार्टी की सरकार एवं १९७९ ई. में उसका विघटन इत्यादि ।

१९९० ई. के आते-आते भूमंडलीकरण के दौर में उदारीकरण की भी शुरुआत हो गई । इसका गहरा असर साहित्यिक क्षेत्र में भी पड़ा । समकालीनता के निर्माण में भूमंडलीकरण की अहम भूमिका है । क्योंकि भूमंडलीकरण मूलतः एक राजनीतिक सोच है, आज इसका उपयोग विकास के नाम पर विकासशील एवं गरीब देशों के शोषण से जुड़ा हुआ है । इसलिए समकालीन साहित्य इसे संदेह की दृष्टि से देखता है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के संदर्भ में स्पष्ट करना आवश्यक है कि यहाँ समकालीनता का अर्थ १९६० ई. के बाद के उपन्यासों से है । हिन्दी सहित्य में 'समकालीन' शब्द प्रायः १९६० ई. के बाद के काल खंड के लिए प्रयोग किया गया है । यह वह काल है जिसमें उन हिन्दी उपन्यासों की रचना हुई है जिसका वैचारिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है ।

1.2 समकालीन उपन्यास और मुस्लिम-संदर्भ

भक्तिकाल के आगमन तक मुसलमानों का राज्य भारत के संपूर्ण हिन्दी क्षेत्रों पर कायम हो चुका था । सूफी साधकों ने इस्लामी कट्टरता के खिलाफ प्रेम का मार्ग चुना । उनके इस चुनाव को अपार जन समर्थन मिला । "मुसलमानों के आचार-व्यवहार, आस्था-विश्वास, जीवन प्रणाली आदि विशिष्ट होने के कारण दोनों संप्रदायों के बीच आपसी संबंध प्रगाढ़ नहीं हो पा

रहे थे । मुसलमानों ने यहाँ के निवासियों को व्यावहारिक संबंधों में भेद प्रकट करने के लिए हिन्दू नाम दिया ।"[1] जिस समय हिन्दी में 'उपन्यास' की शुरुआत हुई, उस समय भारत में अंग्रेजी राज्य पूरी तरह से स्थापित हो चुका था । आधुनिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो रहा था । औरंगजेब की जिस इस्लामी कट्टरता ने हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द को क्षति पहुँचाई थी, अंग्रेजों की कुटिलता ने उसे और प्रज्ज्वलित कर दिया ।

सन् १८८० ई. में लाला श्रीनिवास दास का उपन्यास 'परीक्षा गुरु' जिसे हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है, का प्रकाशन हुआ । इसमें उन्नीसवीं सदी के उभरते मध्यम वर्ग का चित्रण है । इसमें वर्णित मुसलमान पात्र अन्य पात्रों की तरह समाज का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है । इसी प्रकार राधाकृष्ण दास द्वारा रचित उपन्यास 'निःसहाय हिन्दू' (१८९० ई.), देवकीनन्दन खत्री का प्रसिद्ध उपन्यास 'चन्द्रकांता' (१८९१ ई.) जैसे उपन्यासों में मुसलमान पात्र भी कथानक का हिस्सा है । इन उपन्यासों में तत्कालीन समाज के बीच चल रहे मानसिक उधेड़बुन का संदेश है ।

प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में समाज के विभिन्न हिस्सों का वर्णन करते हुए सदियों से चले आ रहे हिन्दू-मुसलमान संबंधों को परखने की कोशिश की । उनके हंस, जागरण आदि कई पत्रों के लेख एवं सम्पादकीय हिन्दू-मुसलमान संबंध एवं सांप्रदायिकता पर केन्द्रित है । स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले भी हिन्दू-मुस्लिम समुदायों के बीच एकता का अभाव

---

1. राय, र. का. *हिन्दू-मुस्लिम रिश्तों के बहाने*. पृ. 30.

था । विभाजन के दौरान हिन्दू एवं मुसलमान दोनों के लिए भारत या पाकिस्तान चुनने की स्वतंत्रता दी गई थी । विस्थापन के दौरान हिंसा एवं अमानवीयता की सारी सीमाऐं तोड़ दी गई । विभाजन की त्रासदी से हिन्दू-मुस्लिम संबंधों में काफी बदलाव देखे गए । जो मुसलमान पहले विधर्मी एवं विदेशी कहे जाते थे, अब वे लोग पाकिस्तान के हिमायती माने गए । उनकी राष्ट्र भक्ति सन्देहास्पद हो रही थी । सन् १९६५ ई. में पाक के आक्रमण ने हिन्दू-मुस्लिम रिश्तों में गहरी खाई खोदने का कार्य किया ।

जनवरी, १९९९ के हंस में पंकज विष्ट की संपादकीय टिप्पणी कि "आज के लेखन का मुख्य स्वर आश्चर्यजनक रुप से एक ओर महिलायें हैं तो दूसरी ओर अल्पसंख्यकों का वह वर्ग जो पिछले पचास वर्षों से मुख्य धारा से लगभग खदेड़ा गया है । हाल की सबसे विचारोत्तेजक और प्रयोगधर्मी रचनाऐं फिर वह 'चाक' हो या 'कलिकथा वाया बाईपास' इन्ही क्षेत्रों की देन है । इस लेखन में जहाँ समकालीन यथार्थ से टकराने का जज्बा है, वहीं प्रयोग करने की हिम्मत भी है ।" बिल्कुल सत्य प्रतीत होता है ।

यह सच है कि समाज में हर वर्ग की अपनी समस्यायें हैं जिसे न चाहते हुए भी लोगों को इससे जूझना पड़ता है । अतः जो व्यक्ति इन समस्याओं से संघर्ष कर आगे बढ़ता है, उससे बेहतर भला और कौन उन समस्याओं को व्यक्त कर सकता है । यह हिन्दी लेखन के परिधि का विकास ही है कि आज मुस्लिम जीवन पर उन्हीं के समाज के लेखकों द्वारा उपन्यास लिखे जाते हैं ।

मुस्लिम उपन्यासकार मो. गुलशेर शानी ने सबसे पहले यह सवाल उठाया था कि हिन्दी उपन्यास में मुसलमान कहाँ है ? 'समकालीन भारतीय

साहित्य' पत्रिका के ४१ वें अंक में नामवर सिंह से बात करते हुए शानी ने सवाल उठाया था कि, "क्या किसी भी देश का भौगोलिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक मानचित्र 12-15 करोड़ मुस्लिम वजूद को झुठलाकर पूरा हो सकता है ?" शानी ने 'कालाजल' में भारतीय मुसलमानों के दुःख-दर्द को पिरोने के क्रम में मुस्लिम समाज के आचार-व्यवहार, रुढ़ियाँ, रीतियाँ, भय, अंधविश्वास, तीज-त्योहार, स्त्री की दयनीय दशा, अशिक्षा इत्यादि का प्रामाणिक चित्रण किया है ।

प्रख्यात कथाकार डॉ. राही मासूम रजा ने आठ उपन्यासों की रचना की है । ये उपन्यास है- आधा गाँव (१९६५ ई.), टोपी शुक्ला (१९६८ ई.), हिम्मत जौनपुरी (१९६९ ई.), ओ**स** की बूँद (१९७० ई.), दिल एक सादा कागज (१९७३ ई.), सीन-७५ (१९७७ ई.), कटरा बी आरजू (१९७८ ई.), असंतोष के दिन (१९८६ ई.) । उन्होंने प्रायः अपने सभी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता, भ्रष्ट राजनीतिक प्रणाली एवं धर्म के व्यापारों पर चर्चा की है । डॉ. रजा के अनुसार इस्लाम स्वीकार कर लेने से ही किसी की मान्यतायें नहीं बदल जाती है । अतः भारत आकर इस्लाम भारतीयता के रंग में रंग गया । सनातन धर्म की कई मान्यतायें इस्लाम में आ गई । हिन्दुओं ने भी कई ऐसी प्रथाओं को अपना लिया जो उनकी अपनी नहीं थी । समाज में हिन्दू-मुस्लिम द्वन्द भ्रष्ट राजनीतिज्ञों की देन है । समाज में इसी कारण वैमनस्यता फैल रही है । अपने उपन्यास 'आधा गाँव' (१९६५) में उन्होंने आजादी के बाद मुसलमानों की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है । अपने ही वतन में बेगाने जैसा अनुभव, सामान्य जीवनधारा से अलग होने, आर्थिक विपन्नता जैसे ज्वलंत समस्याओं का वर्णन इस उपन्यास में है । 'टोपी शुक्ला' में उन्होंने हिन्दू- मुसलमान के संबंध को केन्द्र में रखकर स्वतंत्र भारत में साम्प्रदायिकता, अकेलापन, अलगाववाद, बेरोजगा**री** जैसी परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण किया है ।

मंजूर एहतेशाम ने अपने उपन्यास 'सूखा बरगद' (१९८६ ई.) में एक पात्र अब्बू का जिक्र किया है जो धार्मिक कट्टरता से दूर एक उदार इन्सान है । वे भारत विभाजन के बाद बने पाकिस्तान को अजनबी समझते हैं । अतः वे वहाँ नहीं जाते हैं । वह आजीवन साम्प्रदायिक सोच वाले लोगों से संघर्ष करते हैं । इस लड़ाई में वे जीत नहीं पाते हैं । फिर भी उनकी बहादुरी और निष्ठा प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है । अपने एक दूसरे उपन्यास 'वशारत मंजिल' (२००४ ई.) में उन्होंने मुस्लिम समाज के अन्तर्विरोधों को एतिहासिक संदर्भ में देखने का प्रयास किया है । हिन्दू और मुसलमानों के आपसी भेदभाव एवं वैमनस्य**ता** का कारण उन्होंने अंग्रेजों **की** कुटिल नीति को माना है । वस्तुतः यह उपन्यास मुस्लिम समाज के पिछड़ेपन के कारणों को खोजने का एक ईमानदार प्रयास है । असगर वजाहत अपने उपन्यास 'सात आसमान' (१९९६ ई.) के माध्यम से मुस्लिम समाज के मानसिक द्वन्दों, तनावों एवं अन्तर्विरोधों का चित्रण किया है । इसी तरह बदीउज्जमा अपने उपन्यास 'छाको की वापसी', और अब्दुल बिस्मिलाह ने अपने उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में मुस्लिम समाज में व्याप्त समस्याओं का चित्रण किया है ।

हिन्दी की मुस्लिम महिला उपन्यासकार मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यासों का केन्द्रीय विषय निम्न मध्यम वर्ग मुस्लिम-नारी जीवन की त्रासदी है । प्रेम विवाह, तलाक, पतियों का निकम्मापन, अवैध संबंध, सास का अत्याचार, सौतेली माँ का अत्याचार, परित्यक्ता नारी का अकेलापन, जीने के लिए अवांछित स्थितियों का स्वीकार तथा अन्य अनेक संदर्भों में नारी की विवशता के अत्यंत मार्मिक चित्रण मेहरुन्निसा परवेज ने किये हैं । इसी प्रकार नासिरा शर्मा देश-काल, धर्म-जाति, सम्प्रदाय के भेदों से ऊपर उठकर एक दिल और दिमाग वाले इन्सान के दुःख-दर्द, उत्थान-पतन, को आकार देनेवाली

उपन्यासकार हैं । इनकी रचनाओं में पुरुष प्रधान समाज में हदीस, शरीयत और कुरान में औरतों को दिए गए अधिकारों की जानकारी से लैस अपने हक के लिए संघर्ष करती मुस्लिम महिलायें है । मुस्लिम समाज के सामाजिक चिन्तन, उनके आचार, विचार, संस्कार आदि जैसे ज्वलंत समस्याओं को भी उन्होंने अपनी रचनाओं में समाहित किया है । उपन्यासकार के अनुसार सांप्रदायिकता देश और समाज के लिए जहर है । इससे किसी भी समस्या का निदान संभव नहीं है । अतः स्वस्थ समाज और उन्नतशील राष्ट्रनिर्माण के लिए हर व्यक्ति **का** सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित होना आवश्यक है ।

1.3 समकालीन उपन्यास और उसकी प्रवृत्तियाँ

समय संदर्भ और जीवन की जटिलताओं के कारण आज के उपन्यासों का कलेवर जटिल हो गया है । उसकी परिधि भी बड़ी हो गई है । अतः वर्तमान समाज के बहुआयामी वास्तविकताओं का सफल चित्रण समकालीन उपन्यासों में परिलक्षित होता है । उनमें प्रमुख है - नव औपनिवेशिक स्थितियाँ, विस्थापितों का यथार्थ, स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श इत्यादि । इन प्रवृत्तियों की व्याख्या निम्नलिखित है -

1.3.1 नव औपनिवेशिक स्थितियाँ

नव उपनिवेशवाद एक व्यवस्था है जिसमें पूर्व उपनिवेशी ताकतें अपने पूर्व उपनिवेशितों पर अपना वर्चस्व बनाए रखने का प्रयास करता है । भूमंडलीकरण एवं उपभोग संस्कृति के दौर में यह व्यवस्था अप्रत्यक्ष रुप से सबल है । भूमंडलीकरण का वास्तविक उद्देश्य विश्व के गरीब देशों को आर्थिक एवं वैज्ञानिक सहायता प्रदान कर उन्हें विकास की ओर अग्रसर करना है । भूमंडलीकरण को साकार रूप देने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोश, विश्वबैंक तथा

विश्व व्यापार संगठनों का जन्म हुआ । किन्तु विकसित देशों के आपसी स्वार्थों के टकराव से यह जन विरोधी सिद्ध हो रहा है । फलतः इसके बुरे परिणाम भी सामने आ रहे हैं । देशी बाजार और देशी उत्पादन का अस्तित्व संकट में आ गया है । यह गरीब देशों के शोषण का एक माध्यम बन गया है । अतः इसके खिलाफ समूचे विश्व में एक विद्रोह की भावना भी है ।

भारत में उदारीकरण की शुरुआत १९९१ ई. में हुई । आज हर घर के दरवाजे पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों एवं बैंकों के बिचौलिए खड़े हैं । इनके झूठे वादों एवं आकर्षक विज्ञापनों के पीछे छिपे छल से अन्जान जनता उपभोग संस्कार के चंगुल में फँस रही है ।

1.3.1.1 उपभोग-संस्कृति

उपभोग-संस्कृति का आदर्श यह है कि उपभोक्ता जितना उपभोग करेगा उसे उतनी ही खुशी मिलेगी । किन्तु उसके पीछे की वास्तविकता लोगों को समझ में नहीं आती । भूमंडलीकरण के इस दौर में प्रत्येक वस्तु उपभोग के दायरे में आ गया है । कला, संगीत, साहित्य, धर्म, संस्कृति, संबंध एवं स्वयं मनुष्य भी इसी श्रेणी में आते जा रहे हैं - ब्रांड रुप में । व्यक्ति के मांग को समझकर ही बाजार में माल उतारा जाता है । भूमंडलीय बाजार अपनी मार्केटिंग के तौर तरीकों से सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रहा है । व्यक्तिगत स्तर पर वस्तुओं को हासिल करना और उसे अपनी हैसियत और आत्म सम्मान से जोड़ना इसी बाजार की देन है । आधुनिक जीवन में उपभोग की चीजें इस तरह समाहित हो गई है कि उनके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है ।

1.3.1.2 ब्रांड-संस्कृति

ब्रांड एक प्रकार का व्यापारिक चिन्ह है जो शब्दों या डिजाइनों का समुच्चय होता है । उपभोक्ता के अन्तर्मन में यह अपने विज्ञापित छवि को, उसकी गुणवत्ता एवं उत्कृष्टता को स्थापित कर ब्रांड की विशिष्ट पहचान बनाता है । प्रभा खेतान के शब्दों में "ब्रांड का अर्थ केवल एक छपा हुआ रंगीन बिल्ला नहीं, जिसे उत्पादित वस्तु पर चिपका दिया जाए । ब्रांड का मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक आयाम है । ब्रांड केवल उत्पादित वस्तुओं का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि अपनी साख भी रखता है । वह अपने बारे में उपभोक्ताओं से संबंध स्थापित करता है ।"[1] ब्रांड बाजार में प्रतिष्ठित और स्थापित होने का एक माध्यम है । जहाँ एक ओर व्यापारों के जरिए अपने साम्राज्य की सीमा बढ़ाने वाले कुछ निहित स्वार्थी साम्राज्यवादी शक्तियाँ हैं तो दूसरी ओर इनके बीच में नष्ट होने वाली हमारे मूल्यों की ओर ध्यान देने वाले कुछ सजग व्यक्ति भी है । अतः समकालीन साहित्य प्रतिरोध का औजार बनकर इन सबका विरोध करता है । हिन्दी के समकालीन उपन्यासकारों ने इस नए साम्राज्यवादी शक्तियों के पुनः प्रवेश को रोकने एवं अपना विरोध जाहिर करने का कार्य अपने लेखन के जरिए किया है ।

1.3.1.3 विज्ञापन-संस्कृति

नव उपनिवेशवादी संस्कृति में विज्ञापन का महत्त्वपूर्ण स्थान है । उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए विज्ञापन एजेंसियाँ ब्रांडेड चीजों के प्रचार-प्रसार के लिए स्त्री का प्रमुखता से उपयोग कर रही है ।

---

1. खेतान, प्र. *भूमंडलीकरण : ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र*. पृ. 58

चित्रा मुदगल के उपन्यास 'एक जमीन अपनी' का मूल विषय विज्ञापन है । उपन्यास के पात्र हरीन्द्र के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि निम्न स्तरीय और अविवेकपूर्ण विज्ञापनों का भाव कोमल मन मस्तिष्कों को दूषित कर रहा है । उन्हें अतिशयोक्तियों और चकाचौंध से दिग्भ्रमित कर रहा है । अलका सरावगी ने अपने उपन्यास 'कलि कथा वाया बाईपास' में विज्ञापन की विकृति का वर्णन किया कि अखबारों और दूरदर्शन के विज्ञापनों में राष्ट्रीय ध्वज, चक्र तथा वंदेमातरम् ने बिक कर स्वतंत्रता को करोड़ों रूपये का व्यापार बना दिया है । गाड़ी बनानेवाली कम्पनी से लेकर जूते, मोजे, टी-शर्ट बनानेवाली कम्पनियों ने आजादी की पचासवीं वर्षगाँठ को तिरंगे उड़ते हुए रंगों के बीच पचास लिख नमूने की तरह हर जगह छाप दिया है । "यहाँ तक की सारी मल्टीनेशनल कम्पनियाँ भारत की आजादी की वर्षगाँठ को इस तरह मनाने पर तुली है कि मानो उनकी आजादी का ही जश्न हो ।"[1] इस प्रकार भारत को पूर्ण रूप से एक बिक्री की वस्तु बना दिया है ।

1.3.1.4 साम्राज्यवाद

समकालीन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से लोगों की अधिकार लिप्सा एवं साम्राज्यवादी विचारों पर कुठाराघात किया है । उदाहरण स्वरूप विनोद कुमार शुक्ल का उपन्यास 'नौकर की कमीज' इसका एक प्रतीकात्मक संदेश है । यह उपन्यास दफ्तरी दुनियाँ के दब्बूपन, बेचारगी, आपसी ईर्ष्या, खुशामदी मनोवृति, अफसरशाही मानसिकता तथा दफ्तर के हास्यासपद नियमों का सफल चित्रण करता है । बड़े ऑफिसर ने एक नौकर की कमीज बनवा रखी है । इस कमीज के नाप के नौकर की खोज में असफल रहने

---

1. सरावगी, अ. *कलि कथा वाया बाईपास.* पृ. 138.

पर एक अधीनस्थ कर्मचारी संतुबाबू को वह पहना दी जाती है, जिसके कारण वह नौकरशाही मानसिकता का गुलाम बन जाता है । डॉक्टर के किराएदार होने के कारण संतुबाबू की पत्नी को भी डॉक्टर के घर के कामकाज में सहयोग देना (नौकर बनना) पड़ता है । इस प्रकार यह उपन्यास समाज में व्याप्त अधिकार लिप्सा एवं नव साम्राज्यवादी माहौल के अंधकार पर प्रकाश डालती है ।

1.3.1.5 नव उपनिवेशवाद में स्त्री

भूमंडलीकरण से स्त्री पर जो नकारात्मक प्रभाव पड़ा है उसका अच्छा खासा वर्णन कई समकालीन उपन्यासों में हुआ है । उदयप्रकाश के उपन्यास 'पीली छतरीवाली लड़की' में लेखक के अनुसार उपभोगवादी संस्कृति में सौन्दर्य प्रसाधन, आभूषण और फैशन के विज्ञापन दिखाते है कि ये स्त्री स्वाधीनता के चिन्ह है । किन्तु इसके पीछे की सोच है कि स्त्री उपभोग की वस्तु है । स्त्री शरीर का उपभोग, विज्ञापन जगत का प्रमुख उद्देश्य है । चित्रा मुदगल के उपन्यास 'आवाँ' में भी इसका चित्रण है । रत्न-आभूषण जगत में जो भ्रष्टाचार, प्रतिस्पर्धा, छल-कपट, स्त्री का शोषण, मॉडलिंग आदि है - इसका यथार्थ वर्णन 'आवाँ' में है । उपन्यास की नायिका नमिता जैसी निम्न मध्यम वर्गीय परिवार की लड़की को आधुनिक बाजारु संस्कृति में फँसा कर पूँजीवादियों द्वारा उसका यौन शोषण किया जाता है । विज्ञापन क्षेत्र से जुड़े सिद्धार्थ के माध्यम से इस जगत का दल-दल हमारे सामने आता है ।

भूमंडलीय समाज में स्त्री-श्रम को पहचान दिलाने के साथ ही स्त्री जीवन के हर पहलू को स्पर्श करनेवाले कई उपन्यास हिन्दी जगत में लिखे जा रहे हैं । स्त्रियों के माध्यम से बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपना प्रचार-प्रसार करती हैं । जिसका प्रतिरोध 'कितने पाकिस्तान', 'निन्यानवे', 'कलिकथा वाया बाईपास',

'एक जमीन अपनी', आवाँ, 'अग्निसंभवा', 'आओ पेपे घर चलें' जैसे समकालीन उपन्यासों में वर्णित है ।

1.3.1.6 औपनिवेशिक परिस्थिति द्वारा निर्मित व्यक्ति

उत्तर आधुनिक परिवेश द्वारा उत्पन्न असुरक्षा भाव आज समाज को विचलित कर रहा है । यह असुरक्षा भाव कहीं सांप्रदायिकता तो कहीं लक्ष्यहीन विकास की वजह से उत्पन्न है । कहीं-कहीं उपभोग संस्कृति की भयानकता और उत्पन्न मूल्य ह्रास से भी है । मूल्य ह्रास से संबंध एवं रिश्ते शिथिल होते जाते हैं । व्यक्ति अकेला हो जाता है जो आतंक की वजह बनता है । मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास 'कसप' में उपभोक्ता संस्कृति के अच्छे-बुरे दोनों तरह के दृष्टिकोणों का वर्णन है । यहाँ प्रेम जैसे मूल्य उत्तर-आधुनिक ढाँचे में गढ़ा हुआ मिलता है । जहाँ न तो मिलन की उत्सुकता है और न ही बिछड़ने का गम ।

1.3.1.7 उपभोग संस्कार में रिश्तों की शिथिलता एवं मूल्य-ह्रास

उपनिवेशी संस्कृति में व्यक्ति एक वस्तु में रुपांतरित हो गया है । मानवीय सभ्यता बाजारु सभ्यता में बदल जाने पर नफा नुकसान आर्थिक मुनाफे की तराजू पर तोले जाने लगे हैं । रिश्ता, मित्रता, प्रेम, संवेदना जैसे शब्द विलुप्त हो रहे हैं । जब आदमी और आदमी के बीच की दूरी बढ़ जाती है, तब जीवन मूल्य भी बदल जाते हैं । कमलेश्वर ने अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में बड़ी संजीदगी से इस घटना को व्यक्त किया है । उनके अनुसार जब इन्सानी सभ्यता का भविष्य सौदागिरी सभ्यता में बदला जा रहा हो और मनुष्य के सुकून और अरमानों को मुनाफे की तिजोरियों में बंद किया जा रहा हो और इन्सानी सभ्यता फरेबी सौदागरों की जाल में फँस रही हो तब वह समय बहुत ही नाजुक होता है । "ऐसे वक्त मे सिर्फ बाजार की कद्रें ही नहीं

बदलती, रिश्तों के मयार और मूल्य भी बदलते हैं... दिलों के एहसास भी बदलते हैं... और तब तक अनकहे तरीकों से कहानियों के आदि और अन्त भी बदलते हैं ।"[1]

1.3.2 विस्थापन का यथार्थ

अपने जन्म स्थान और मूल निवास स्थान को छोड़ कर एक नए स्थान की ओर प्रस्थान करने की प्रक्रिया विस्थापन कहलाती है । औद्योगिकीकरण के कारण उन्नीसवीं सदी में यह समस्या विकराल हो गई । लोग रोजगार की तलाश में शहरों की ओर भागने लगे ।

बीसवीं सदी में हुए युद्धों और राजनीतिक कारणों से विस्थापन को बढ़ावा मिला । दूसरे विश्व युद्ध के बाद अनेक नए राष्ट्रों का जन्म हुआ । राष्ट्रों के विभाजन ने मानव जाति के विस्थापन को और बढ़ा दिया । इस तरह विस्थापित हुए राष्ट्रों में भारत, जर्मनी, कोसोवो, फिलिस्तीन-इजरायल आदि है । सूचना एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र में आई क्रांतिकारी परिवर्तन के बाद विश्व की नई पीढ़ी को अमेरिका ने आकर्षित किया है । इनमें से अधिकांश लोगों ने विदेशों में ही रहने का निश्चय कर लिया है । वहाँ रहते हुए भी उन्हें अपनी मौलिक संस्कृति, परंपरा और भाषा से काफी लगाव है । अपने बच्चों से भी वे यही आशा करते हैं । फलतः यह पीढियों के बीच के संघर्ष एवं सांस्कृतिक दरार की वजह बनता है । समकालीन हिन्दी साहित्यकारों ने विस्थापन से जुड़ी समस्याओं और उसके विभिन्न रुपों के निमित्त समाज पर हो रहे प्रभावों को अपने उपन्यास का विषय बनाया है ।

---

1. कमलेश्वर. *कितने पाकिस्तान*. पृ. 175.

1.3.2.1 भारत विभाजन से उत्पन्न विस्थापन

१९४७ ई. में भारत विभाजन के कारण करोड़ों लोगों को विस्थापित होना पड़ा । देश के विभाजन ने सामान्य जनता की सुरक्षा पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया । लोगों को आगजनी, लूट और हिंसा का शिकार होना पड़ा । विभाजन से विस्थापित होने वाली स्त्रियाँ भय, दहशत, तनाव और शारीरिक शोषण की शिकार हुई । बंटवारे के कारण हुई विभीषिकाओं का सटीक वर्णन हिन्दी के विभिन्न समकालीन उपन्यासों में हुआ है । इनमें से कई उपन्यास तो विभाजन के बाद भारत में मुसलमानों की अवस्था, शरणार्थियों और मोहाजिरों की समस्याओं का जीवंत दस्तावेज है । उपन्यासकार यशपाल का 'झूठा सच' इसका ज्वलंत उदाहरण है । मानवता की लाश पर पाशविकता अपने विजय का जश्न किस तरह मनाती है, धर्म और राजनीति गलत संदर्भ में किस तरह वर्षों से साथ रहने वाले लोगों को एक दूसरे का शत्रु बना देते हैं, का सटीक वर्णन इस उपन्यास में है । भारतीय विभाजन की वेदना का यह उपन्यास औपन्यासिक महाकाव्य है । द्रोणवीर कोहली का 'वाह कैंप' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें उन्होंने बंटवारे से उत्पन्न कलंक के कोलाहल को कुशलता से वर्णन किया है । देवेन्द्र सत्यार्थी के उपन्यास 'कठपुतली' में अंग्रेजों द्वारा भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों को कठपुतली की तरह नचाने की चर्चा है । बलबंत सिंह के उपन्यास 'काला कोस' में पंजाब के बंटवारे की कहानी है । विभाजन से उत्पन्न विस्थापन का बुरा असर स्त्रियों पर पड़ा । इस पैशाचिक हमले की चर्चा विभाजन संबंधी सभी उपन्यासों में है । यज्ञदत्त शर्मा के उपन्यास 'इन्सान' में स्त्रियों और बच्चों पर हुए अत्याचारों का वर्णन इस प्रकार है कि मनुष्यता कहीं बह गई । क्रूरता का पक्ष मजबूत होता जा रहा था । मासूम बच्चों को धर्म के नाम पर पागल लोगों ने मार डाला । बालिकाओं के अंग-भंग कर, हाथों को पीछे

बाँध कर उनके नंगे जूलूस निकाले गए । घर वालों के सामने ही बहू-बेटियों को हवस का शिकार बनाया गया ।

1.3.2.2 शरणार्थियों तथा मोहाजिरों की समस्यायें

द्रोणवीर कोहली का 'वाह कैंप', प्रताप सहगल का 'अनहद नाद', हरदर्शन सहगल का 'टूटी हुई जमीन', महीप सिंह का 'अभी शेष है' आदि उपन्यासों में विस्थापितों की भौतिक एवं मानसिक समस्याओं का मार्मिक वर्णन है । देश विभाजन के साथ ही अनेक परिवार बंट गए । लोग बेघर हो गए, उनके दिल टूट गए । सहारे छिन गए । स्वतंत्र भारत में मुसलमानों की सबसे बड़ी समस्या देश की मुख्य धारा से उनका अलगाव बोध था । इन समस्याओं को डॉ. राही मासूम रजा के उपन्यास 'आधा गाँव', 'ओस की बूंद', नासिरा शर्मा का 'जिन्दा मुहावरे', जैसे उपन्यासों में बड़ी संजीदगी के साथ वर्णन है । 'आधा गाँव' में यह दिखाया गया है कि आजादी के बाद के परिवेश ने हिन्दुओं को अधिक हिन्दू और मुसलमानों को अधिक मुसलमान बना दिया । नासिरा शर्मा रचित 'जिन्दा मुहावरे' में अपने ही घरों में बेघर होने का एहसास करने वाले मुसलमानों की दास्तान है । "यह तजुर्बा कितना तकलीफ देह होता है कि जहाँ आप पैदा हो, जिस जमीन को आप अपना वतन समझें, उसे बाकी लोग अपना गलत कब्जा बतायें । कदम-कदम पर यह एहसास दिलाएँ कि तुम यहाँ के नहीं बाहर के हो ।"[1] मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यास 'पासंग' में दो बुजुर्ग औरतें भारत छोड़कर पकिस्तान नहीं जाना चाहती है ।

इस प्रकार कई समकालीन उपन्यासों में विभाजन और इससे जुड़े विस्थापन की समस्या की अभिव्यक्ति संजीदगी के साथ की गई है ।

1. शर्मा, ना. *जिन्दा मुहावरे.* पृ. 101

1.3.2.3 विकास योजनाओं से उत्पन्न विस्थापन

समकालीन संदर्भ में विकास योजनाओं के कारण विस्थापित होने वाले लोगों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है । विकास और विस्थापन का दंश, आदिवासी संसाधनों और संस्कृति के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार, अशिक्षा, गरीबी इत्यादि आदिवासियों के जीवन में विद्यमान है । सेठ, साहूकार, सूदखोर, ठेकेदार, दलाल जैसे लोग बाजार के रुप में प्रवेश कर आदिवासियों और उनके समाज का शोषण करते हैं । विकास कार्य के नाम पर भारतीय जनजातियों को विस्थापन और शोषण का शिकार होना पड़ता है । कई समकालीन उपन्यासकारों ने विस्थापन के विभिन्न पहलुओं को लेखन का विषय बनाया है ।

हिन्दी में उपन्यासकार संजीव के उपन्यासों में औद्योगीकरण से उत्पन्न समस्याओं पर सबसे ज्यादा प्रकाश डाला गया है । उनके कुछ उपन्यास 'सावधान नीचे आग है', 'धार', 'पाँव तले की दूब' इत्यादि इसके उदाहरण है । विकास देश की प्रगति के लिए आवश्यक है । किन्तु विकास का रास्ता सही नहीं होने से जनता को हानि होती है । जीवन के गति में बाधा आती है । इसके साथ ही बड़े पैमाने पर लोगों का विस्थापन भी हो जाता है । विकास के नाम पर लोगों को जिस तरह से बेदखल कर उन्हे विवश और असहाय बना दिया जाता है, यह एक ज्वलंत प्रश्न है । जब औद्योगिक क्रांति के लिए सरकार इकाईयों की स्थापना करती है, उस समय प्रत्येक प्रभावित परिवार के एक-एक व्यक्ति को नौकरी दी जाती है । इस परिवार की नई पीढ़ी के पास न तो जमीन रहती है और न ही नौकरी । फलतः वह अभिशप्त जीवन जीने को विवश होकर प्रशासनिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह और आन्दोलन करने को

विवश हो जाती है । इस तथ्य को सुभाष पंत ने अपने उपन्यास 'पहाड़चोर' में सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया है । बड़े-बड़े बाँध समय की आवश्यकता है । पर भारत ने टिहरी को डूबते हुए देखा है । सरदार सरोवर बाँध के लिए आसपास के आदिवासी गाँवों को डूबते हुए देखना मन को उदास कर देता है । अमित शर्मा ने अपने उपन्यास 'विस्थापित' में विस्थापन की इन्हीं समस्याओं को उजागर किया है ।

1.3.2.4 राजनीतिक और प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न विस्थापन

भारत में राजनीतिक कारणों से उत्पन्न विस्थापन का ज्वलंत उदाहरण कश्मीर के कश्मीरी पंडितों का है । इन ज्वलंत समस्याओं पर उपन्यासकार चन्द्रकान्ता का 'कथा सतीसर', क्षमा कौल का 'दर्द पर' और मनीषा कुलश्रेष्ठ का 'शिगाफ' चर्चित उपन्यास हैं । इन उपन्यासों में कश्मीरी पंडितों के अपने घर से निष्कासित होने तथा शरणार्थी शिविरों के दड़बेनुमा जिन्दगी जीने की दारुण स्थिति का वर्णन किया गया है । इस विस्थापन के कारणों को भी ढूंढ़ निकालने का प्रयास इन उपन्यासकारों द्वारा किया गया है । इनमें सबसे मुख्य एवं प्रबल कारण भारत का विभाजन है । यह एक राजनीतिक मुद्दा है । यहाँ आतंकवाद अपनी चरम सीमा पर है । पाकिस्तान इसे इस्लामीकरण कराना चाहता है । अतः वह अपने रास्ते से हिन्दू या धर्मनिरपेक्ष मुसलमानों को हटाना चाहता है । यहाँ के राजनैतिक दल उसका साथ देते हैं ।

प्राकृतिक आपदाओं से जो विस्थापन होता है, इसका वर्णन लक्ष्मण गायकवाड़ के उपन्यास 'दुभंग' में हुआ है । लातुर का किल्लारी नामक गाँव भयानक भूकंप के कारण पूर्णतः उजड़ गया है । भूकंप से उत्पन्न विनाश एवं इस गाँव के पूरे इतिहास का चित्र इसमें प्रस्तुत किया गया है । विस्थापन

से हमारी कई उच्च संस्कृतियों का अंत हो जाता है । लोग मानसिक एवं शारीरिक संघर्षों से तनाव ग्रस्त बन जाते हैं ।

1.3.2.5 समकालीन हिन्दी उपन्यासों में अन्तर्राष्ट्रीय विस्थापन

अंग्रेज हजारों भारतीय मजदूरों को छल-कपट से गिरमिटिया मजदूर बनाकर विदेश ले गए । गिरिराज किशोर का 'पहला गिरमिटिया' और अभिमन्यु अनत के 'लाल पसीना' और 'पसीना बहता रहा' जैसे उपन्यास लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले गिरमिटिया मजदूरों की यातना भरी जिन्दगी पर आधारित है । इन उपन्यासों में मजदूरों की विवशता, उनका लोभ, आकांक्षा, पतन और विकास का वर्णन है ।

1.3.2.6 गिरमिटिया मजदूरों का जीवन संघर्ष

दक्षिण अफ्रीका के गिरमिटिया मजदूरों के जीवन संघर्षों का चित्रण गिरिराज किशोर के उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' में है । १९३५ ई. में अंग्रेजों ने मॉरिशस द्वीप में दास प्रथा की समाप्ति कर दी । अंग्रेजों ने भारत से शर्त-बंध अनुबंध पर प्रति माह पाँच सौ मजदूरों को मॉरिशस जाने की अनुमति दी । पाँच वर्षों तक की गई सेवा के बदले भरपूर पारिश्रमिक लेने के साथ ही इन्हें भारत लौटने या द्वीप में कहीं भी जमीन लेकर बसने को स्वतंत्र घोषित किया गया । किन्तु शक्ति-सत्ता के मद में अंग्रेजों ने अनुबंध की शर्तों को बेमानी करते हुए दास प्रथा को बनाए रखा । फलतः भारतीय मजदूरों की संताने पीढ़ी दर पीढ़ी गिरमिटिया ही बनी रही । वहाँ गिरमिटिया के गले में जानवरों की तरह पट्टा डालकर एक पहचान नम्बर डाल दिया जाता था । चौबीसों घंटे अथक परिश्रम करने के बदले आधा देह कपड़ा और आधा पेट भोजन ही उपलब्ध था । उन पर तरह तरह के अत्याचार किए जाते थे । जैसे -

कोड़ों से पीटकर घाव बनाना एवं उसपर मिर्च छिड़कना, गन्ने के रस को मजदूरों के शरीर पर लगाकर पेड़ से बाँधकर उसे लाल चींटियों से नुचवाना, कुत्तों से नुचवाकर देह तार-तार कर देना, मजदूरों की स्त्री से बलात्कार करना इत्यादि । गिरमिटियों की युवा पीढ़ी यह समझने लगी । वे इन अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष करने लगे । इन सभी घटनाओं का वर्णन 'लाल पसीना' में है ।

दक्षिण अफ्रीका में कानूनी तर्क सुलझाने आए मोहनदास करमचंद गाँधी ने जिस तरह गिरमिटिया मजदूरों की स्थिति को सुधारने के लिए परिश्रम किया, उसका वर्णन गिरिराज किशोर के उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' में है । भारतीय वशंजों को काले नियमों के चंगुल से बचाने के लिए गाँधीजी ने सत्याग्रह की शुरुआत की । भारतीय और अफ्रीकी लोगों को गुलामी की मानसिकता से बाहर निकालने के लिए उनका प्रयास सचमुच अविस्मरणीय है ।

1.3.2.7 नस्लवाद एवं रंगभेद

ब्रिटेन में हो रहे नस्लभेद, रंगभेद और प्रवासी जीवन के दर्द की मार्मिक अभिव्यक्ति महेन्द्र भल्ला के उपन्यास 'दूसरी तरफ' में है । प्रवासी भारतीयों के प्रति अंग्रेज युवा पीढ़ी की नफरत और शत्रुता का भाव, भारतीयों को अकारण अपमानित करना, पुलिस का पक्षपात, प्रवासियों में भय और असुरक्षा की भावना जैसी बातों का उपन्यास में, सहजता से वर्णन किया गया है । एक ओर प्रवास में रहनेवाला भारतीय हमेशा भयावह, संक्रामक और खून ठंढ़ा कर देनेवाले आतंक के साये में जीता है, वहीं दूसरी ओर भारत लौटकर बेरोजगारी के आतंक से आतंकित रहता है । २००९ ई. में भारतीय छात्रों पर आस्ट्रेलिया में जो आक्रमण हुआ था, नस्लवाद और रंगभेद का ज्वलंत उदाहरण

है । इन सबके कारण प्रवासी भारतीय हृदय और मस्तिष्क के बीच बंटकर रह जाता है ।

1.3.2.8 सांस्कृतिक टकराहट

पश्चिम में रहनेवाला प्रत्येक भारतीय प्रवासी अपने संस्कारों, जीवन मूल्यों एवं धार्मिक चेतना को अपने अन्दर बचाकर रखता है । परंतु वास्तविक समस्या तब सामने आती है, जब इनके बच्चे बड़े हो जाते हैं । वे पाश्चात्य सभ्यता में पले-बढ़े होते हैं । इनके खून में तो भारतीयता होती है पर परिवेश में पश्चिम । फलतः प्रत्येक घर में 'सांस्कृतिक द्वन्द' का जन्म होता है ।

रविन्द्र कालिया का उपन्यास 'ए. बी. सी. डी.' में विदेशों में रहने वाले भारतीयों के सांस्कृतिक संकट का वर्णन है । उपन्यास में एक ओर शील और हरदयाल है जिनका पालन-पोषण भारतीय संस्कृति में हुआ है, तो दूसरी ओर उनकी संतानें शीनी और नेहा, जो अमेरिकी संस्कृति में पली बढ़ी है । शीनी और नेहा भारतीय संस्कृति के बारे में संशयग्रस्त है । वे भारतीय संस्कृति से ताल-मेल नहीं बिठा पाती हैं । यह दो पीढ़ियों के बीच का, दो विभिन्न संस्कृतियों या जीवन मूल्यों का अन्तर्द्वन्द है । भारतीय और पाश्चात्य संस्कारों से उत्पन्न अन्तर्द्वन्द से ग्रस्त सामान्य व्यक्ति तिल-तिल कर घुटने लगता है । भौतिकता के इस अन्धी दौड़ में मानवता एवं आत्म-सम्मान कहीं खो जाते हैं । समकालीन उपन्यासों में उषा प्रियंवदा कृत 'शेष यात्रा', सुषमा वेदी का 'हवन', द्रोणवीर कोहली का 'नानी' आदि प्रवासी भारतीय के शिथिल रिश्ते को अभिव्यक्त करते हैं ।

1.3.3 समकालीन उपन्यास और स्त्री-विमर्श

विश्व की आधी आबादी होते हुए भी स्त्री सबसे उपेक्षित एवं शोषित है । फ्रेडरिक एंगेल्स ने कहा है "मातृसत्ता का विनाश स्त्री जाति की विश्व ऐतिहासिक पराजय थी । अब घर के अन्दर भी पुरुष ने अपना आधिपत्य जमा लिया ।"[1] जहाँ कहीं स्त्री ने अपनी प्रतिभा और मेधा की ताकत प्रकट की वहाँ उसे अधिकार के साथ दबा दिया गया । उसे मात्र एक शरीर के रुप में देखा गया । स्त्री-विमर्श नारी के इसी दमन की प्रतिक्रिया है । आज स्त्री अपने आप को स्थापित करना चाहती है । वह अपनी प्रतिभा एवं काबिलियत की स्वीकृति चाहती है ।

अंग्रेजी में विमर्श का समानार्थक शब्द 'डिस्कोर्स' होता है, जिसका अर्थ है - विचार-विनिमय, परिचर्या, सोच-विचार, जीवन्त बहस । अतः स्त्री जीवन के हर पहलू को लेकर गंभीर सोच-विचार, उसके शोषण, दमन, उत्पीड़न, उपेक्षा जैसे विभिन्न आयामों पर परिचर्या करते हुए मानवोचित जीवन जीने के अधिकार को दिलाना ही स्त्री स्वतंत्रता आन्दोलन है । यही साहित्य का स्त्री-विमर्श है । लिंग भेद पुरुष समाज की देन है । सामाजिक न्याय के लिए इन भेदों को अवश्य ही दूर करना चाहिए । पाश्चात्य देशों में नारी आन्दोलनों की शुरुआत मताधिकार को लेकर हुआ । उस समय किसी भी महिला को इसका अधिकार नहीं था । फलतः १८६९ ई. में अमेरिका में महिलाओं को मतदान का अधिकार मिला । स्त्री मुक्ति आन्दोलन का दूसरा चरण दूसरे विश्व युद्ध से प्रभावित होकर साठ के दशक में शुरु हुआ । महिलाओं ने महसूस किया कि

---

1. एंगेल्स, फ्रे. *परिवार, निजी संपति और राज्य की उत्पति.* पृ. 64.

कानूनी तौर पर समानता के नियम होने पर भी व्यावहारिक स्तर पर भेद भाव विद्यमान है । १९४९ ई. में 'द सेकेंड सेक्स' लिखकर सिमोन द बुआ ने इस चुप्पी को तोड़ा । १९६६ ई. में बेट्टी फ्राइडन ने 'द फेमिनिन मिस्टिक' लिखकर स्त्रियों के असंतोष को शब्दवद्ध किया । किन्तु कुछ ही समय बाद पश्चिम की स्त्रियाँ इस सच्चाई से अवगत हो गई कि पुरुष के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता है । 'बैक टू होम' आन्दोलन इसका परिणाम है । नारीवाद के तीन भाग हैं - १. समाजवादी नारीवाद २. उदारवादी नारीवाद ३. उग्रवादी नारीवाद । समकालीन संदर्भ में समाजवादी और उदारवादी नारीवाद का ही प्रभाव है । फलतः नारी विमर्श में अब पुरुषों को नकारा नहीं जाता अपितु उसे स्वीकारते हुए समता एवं समान अधिकार की माँग की जाती है । वर्जीनिया वुल्फ पाश्चात्य नारीवाद की प्रेरक साहित्यकार है । इनकी बहुचर्चित रचना 'अपना कमरा (A Room of One's Own)' नारीवादियों का 'बाइबल' है । उनके अनुसार नारी का अपना कोई कमरा नहीं । जब उनके पास पैसा आ जाता है एवं अपना अलग कमरा बन जाता है, तब ही वह मुक्त हो सकती है । सिमोन द बुआ ने अपनी रचना 'द सेकेंड सेक्स (The Second Sex) के माध्यम से सिद्ध करने का प्रयास किया है कि समाज मानव मूल्य केंद्रित नहीं अपितु पितृसत्तात्मक मूल्य केन्द्रित है । अतः व्यवस्था का आमूल परिवर्तन अनिवार्य है । जर्मन ग्रियर अपनी रचना 'द फिमेल यूनक (The Female Eunch)' में कहा है कि नारी की स्थिति का सुधार क्रांति से ही संभव है । इस प्रकार विश्व के प्रायः सभी भाषा साहित्य में नारी मुक्ति को लक्ष्य करके लेखन किया गया है ।

भारत में यद्यपि आदिकाल से ही स्त्री लेखन तथा स्त्री विद्रोह का स्वर मुखरित है । किन्तु १९७० ई. के बाद हीं एक लेखन के रुप में स्त्री

मुक्ति को लक्ष्य कर लिखे गए साहित्य की शुरुआत हुई । आदिकाल, मध्यकाल और रीतिकाल के साहित्य में प्रायः स्त्री का भोग्या रुप ही चित्रित हुआ है । नवजागरण काल के पश्चात भारतीय साहित्य के आधुनिक काल में स्त्री को मुक्त करने एवं उसके जीवन को सुधारने का काम कई उपन्यासकारों ने किया । स्त्री शिक्षा का प्रचार-प्रसार इसका प्रमुख कारण है । १९७० ई. के बाद नारी लेखन स्त्री की आत्म पहचान और आत्मबल को उद्घोषित करता है । प्रभा खेतान, उषा प्रियवंदा, गीतांजलि श्री, मेहरुन्निसा परवेज, नासिरा शर्मा, चित्रा मुदगल, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, कृष्णा सोबती जैसे उल्लेखनीय महिला रचनाकार हैं, जिनका योगदान हिन्दी साहित्य में अविस्मरणीय है । आधुनिक संदर्भ में स्त्री अपनी हैसियत जानती है । अतः उसने अपने ऊपर किए जाने वाले अत्याचारों एवं अन्यायों के खिलाफ विद्रोह करना शुरु कर दिया है । समकालीन नारी लेखन या विमर्श इसी का परिणाम है । इसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ है - पारिवारिक शोषण के खिलाफ विद्रोह, नौकरी पेशा नारी का विद्रोह, रुढियों के प्रति विद्रोह आदि । ये प्रवृत्तियाँ समकालीन रचनाओं में दिखाई पड़ती है ।

1.3.3.1 परिवार में स्त्रियों का शोषण

परिवार सुरक्षा का प्रतीक माना जाता है । किन्तु अधिकांश स्त्रियों के लिए परिवार भी असुरक्षित है । यह उत्पीड़न एवं शोषण का केन्द्र है । पितृसत्तात्मक समाज नारी को अपने नियमों में ढ़ाल देता है । उसी परिधि में उनका लालन-पालन होता है । जो इसका विरोध करती है उसे समाज में बदनाम कर दिया जाता है । मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'बेतवा बहती रही' में एक पात्र 'उर्वशी' का उसके घर में ही उसका अपना ही बड़ा भाई उसका दैहिक शोषण करता है । किन्तु वह विद्रोह करने को तैयार नहीं होती । क्योंकि उन्हें सिखाया

गया है कि बेटी को जुबान काबू में रखना चाहिए । 'छिन्नमस्ता' की माँ हमेशा अपनी पुत्री को डाँटती रहती है कि लड़की को आवाज किए बिना चलना चाहिए । खाँसी आए तो दबाना चाहिए । बेटा-बेटी का विभेद भारतीय समाज में प्रायः हर जगह है । इस भेदभाव की रुढ़ियों के कारण नारी घर की चारदिवारी में कैद कर दी जाती है । इस अमानवीय स्थिति को समकालीन रचनाकारों ने अपने लेखन का विषय बनाकर आवाज उठाया है । आधुनिक नारी यह समझ चुकी है कि शादी स्त्री शोषण का एक माध्यम है । उसको अपने आत्मसमर्पण के बदले अवज्ञा ही मिलती है । नासिरा शर्मा के उपन्यास 'सात नदियाँ : एक समंदर' की तय्यबा शादी को नारी के जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप मानती है । उनके अनुसार शादी शोषण और पतन की शुरुआत है । समकालीन उपन्यासों में पुरुष को लेकर नारी की मानसिकता में बहुत बड़ा बदलाव आ गया है । 'सात नदियाँ : एक समन्दर' की तय्यबा कहती है - "मेरी जिन्दगी का निशाना मर्द नहीं है, बल्कि मर्द एक जरुरत है । एक भोजन जो हमारी शारीरिक भूख का इलाज है ।"[१] भारतीय समाज अब भी तलाक को पूर्णतया स्वीकार नहीं करता । अतः तलाकशुदा नारी को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है । नासिरा शर्मा के उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' की अमृता एवं 'शाल्मली' की शाल्मली पढी-लिखी एवं आत्मनिर्भर महिला है फिर भी तलाक के प्रति सामाजिक मानसिकता से डरनेवाली है । मेरुन्निसा परवेज के उपन्यास 'अकेला पलाश' में इस मानसिकता का खुलकर चित्रण किया गया है । उपन्यासकार के अनुसार तलाकशुदा स्त्री को हमारे समाज के पुरुष सार्वजनिक मानते हैं ।

---

1. शर्मा, ना. सात नदियाँ : एक समन्दर. पृ. 23

1.3.3.2 नौकरी पेशा स्त्री

स्त्री शिक्षा नारी को सशक्त करने का एक प्रमुख कारक है । शिक्षा के कारण वह अपने आस-पास की वास्तविकताओं से ही नहीं अपितु विश्व की सभी गतिविधियों से परिचित हो जाती है । शिक्षित नारी के लिए उसका अगला कदम स्वावलंबित होना है । अतः वह नौकरी के क्षेत्र में प्रवेश कर आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को साकार करने के लिए कठोर परिश्रम करती है एवं धन कमाती है । किन्तु यह पाया गया है कि पहले नारी का शोषण घर में होता था तो अब वह शोषण नौकरी के क्षेत्रों में भी है । उसका अपनी आमदनी पर कोई अधिकार नहीं है । उसके कमाये हुए पैसों को लेकर भी उसके घर में अशांति फैल जाती है । यह समकालीन स्त्री लेखन का ही नहीं बल्कि साहित्य का भी एक विचारणीय विषय है । कई उपन्यासकारों ने इस यथार्थ को अपने-अपने ढ़ंग से व्यक्त किया है ।

गीतांजलि श्री के उपन्यास 'माई' की पात्र माई कहती है - "स्त्री के लिए सबसे बड़ी बात है अपने पैरों पर खड़ा होना, आज के जमाने में वह सीख लिया तो बाकी सब अच्छा हीं हो ।"[1] 'ठीकरे की मंगनी' की महरुख कहती है- "यह नौकरी जो मेरी पहचान है, जो मेरा भविष्य और वर्तमान है ।"[2] मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यास 'अकेला पलाश' का तुषार पुरुषों की मानसिकता और निहित स्वार्थ की पोल खोलते हुए तहमीना से कहता है- "हम अपने स्वार्थ के लिए ही स्त्री को इतनी स्वतंत्रता देते हैं ताकि वह घर के लिए पैसे कमा सके ।"[3] यह एक सामाजिक सच्चाई है । युगों- युगों से चले आ रहे शोषणतंत्र

1. श्री, गीतांजलि. माई. पृ. 121
2. शर्मा, ना. ठीकरे की मंगनी. पृ. 217
3. परवेज, मे. अकेला पलाश. पृ. 167

का एक विकृत चेहरा है । समकालीन उपन्यासकार नारी की अस्मिता एवं उसकी भूमिका संबंधी नई सोच को सृजनात्मकता के जरिए व्यक्त करने का काम कर रहे हैं । घर, परिवार एवं समाज में उसकी अपनी पहचान होनी चाहिए । स्वतंत्रता की इस तलाश में चाहे जितने भी प्रयास हो, शोषण नारी का पीछा नहीं छोड़ता । उसका किसी न किसी रुप में शोषण होता ही रहता है । नौकरी पेशा स्त्री अपना स्वाभिमान एवं अपनी अस्मिता आर्थिक स्वतंत्रता हासिल कर बचाना चाहती है । किन्तु उसके वेतन पर उसका कोई अधिकार नहीं रह जाता है । परिवार का सारा बोझ भी उसपर डाल दिया जाता है । 'अकेला पलाश' की तहमीना घर और दफ्तर का काम कर इतनी थक जाती है कि उसका स्वास्थ खराब हो जाता है । फिर भी उसका पति उससे अपनी पसंद का भोजन चाहता है । घर के कामों में उसे किसी से कोई सहायता नहीं मिलती है । अतः जिम्मेदारियों को निभाते-निभाते वह तनावग्रस्त एवं कुंठित हो जाती है । परिवार को संभालने की प्रक्रिया में वह खुद विघटित हो जाती है । नासिरा शर्मा के उपन्यास 'शाल्मली' में शाल्मली को अपनी व्यस्तता के कारण अपनी बीमार माँ से भी मिलने का अवसर नहीं मिलता है । अंततः उसे अपना जीवन नीरस लगने लगता है ।

स्त्री को सिर्फ देह के रुप में देखने वाले पुरुष समाज शिक्षित नौकरी पेशा स्त्री को भी धन पैदा करने वाली एक मशीन मानता है । 'शाल्मली' के नरेश का यह कथन - "देखो, लड़की पढ़ी-लिखी है, तो धन का लालच छोड़ो, क्योंकि धन पैदा करने की मशीन तो वह है ही ।"[1] यह स्त्री के प्रति पुरुषों की मानसिकता का परिचायक है । मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यास 'अकेला पलाश'

---

1. शर्मा, ना. शाल्मली. पृ. 81

में विमला का आर्थिक शोषण स्वामी जी कर रहे हैं । स्वामी उसे एक दूसरे आश्रम में भेजता है जहाँ उसका यौन शोषण होता है । नर्सों का शोषण डॉक्टरों द्वारा किया जाता है । 'अकेला पलाश' में इसका यथार्थ चित्रण हुआ है । नाइट ड्यूटी में नर्सों का यौन शोषण होता है । उन्हें डॉक्टरों के इशारे पर ही चलना पड़ता है । अन्ततः स्त्री का ही दोष मानकर उसे चेतावनी भी दी जाती है । डॉक्टर खान नई-नई आई नर्स के साथ छेड़खानी करते हैं । वह चिल्लाकर लोगों को इकट्ठा कर बच जाती है । किन्तु लोगों के लिए यह मात्र एक तमाशा है । आखिर कुछ लोग इसे रफा-दफा कर उसे चेतावनी देते हैं - "अभी तुम्हारी नई-नई नौकरी है, तुम्हें अनुभव नहीं है, आइन्दा ऐसी गलती नहीं होनी चाहिए ।"[1] शिक्षण संस्थान भी इससे मुक्त नहीं है । 'तत्सम' उपन्यास की पात्रा वसुधा इसका ज्वलंत उदाहरण है । 'ठीकरे की मंगनी' में स्कूली वातावरण में होने वाले शोषणों का चित्रण है ।

अतः सुशिक्षित एवं स्वावलंबी स्त्रियों को भी प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ता है । नौकरी करने वाली स्त्री की एक और विडंबना यह है कि उसके अपने सहकर्मियों के साथ की बातचीत को भी शक के नजरिए से देखा जाता है । अतः स्त्री बनकर समाज में जीना काफी मुश्किल है । उसे बहुत संघर्षों का सामना करना पड़ता है । समकालीन उपन्यासों में बहुत ऐसे पात्र हैं जो समाज में होनेवाले परिवर्तनों एवं परिवर्तित मानसिकताओं से हमें आगाह कराते हैं ।

---

1. परवेज, मे. *अकेला पलाश*. पृ. 95

1.3.3.3 स्त्रियों का विद्रोह

आज की स्त्री सीता-सावित्री की परम्पराओं को नकारती है । वह सामाजिक स्वीकृति पर नहीं अपितु अपनी स्वीकृति पर जीने की हिम्मत रखने वाली है । झूठी नैतिकता का विरोध करते हुए वह अपनी शर्तों पर जीती है । वह किसी भी प्रकार की अग्नि परीक्षा देकर अपने को पवित्र सिद्ध कर सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करने के पक्ष में नहीं है । क्योंकि वह समझती है कि सारे आचरण, सारे नियम पुरुषों द्वारा निर्मित है । सारे शास्त्र उनके द्वारा लिखे गए हैं जिसमें स्त्री को फँसाकर रखने का चक्रव्यूह है ।

समकालीन संदर्भ में स्त्री ने आधुनिक शिक्षा ग्रहण कर आत्मबोध प्राप्त कर लिया है । उसे अपने तथा अपने वर्ग के यथार्थ का ज्ञान है । अतः प्रतिरोध एवं विद्रोह उसके असंतोष का परिणाम है । समकालीन उपन्यास के स्त्री विमर्श अर्थात स्त्री पक्ष की रचनाओं में इसकी प्रतिछवि मिलती है । "अपने विचार हैं । स्वतंत्र विचार... उन्मुक्त विचार । अतीत से विपरीत स्वर लिए, उत्पीड़न की लीक तोड़ते उपेक्षा के सूत्रों से भिड़ते, शोषण की मर्यादाओं की धज्जियाँ उड़ाते, बलात्कार, अश्लीलता के प्रति अपना विरोध दर्ज करते, दो-दो हाथ करने को उत्सुक दिखते ।"[1] समकालीन उपन्यास 'इदन्नमम' की कुसुमा सामाजिक नियमों के दोहरेपन के विरुद्ध अपनी असहमति जाहिर करते हुए कहती है- "किसने सिरजी है बन्धनों की रीत ? जो नाम लेती हो ? मनु-व्यास ने ? रिसियों-मुनियों ने ? देवताओं ने कि राक्षसों ने ?[2] समाज के सारे नियम स्त्री के शोषण के लिए सफल सिद्ध हो रहे हैं ।

---

1. धर्मपाल, दि. *स्त्री.* पृ. 72.
2. पुष्पा, मै. *इदन्नमम.* पृ. 83

परम्परा से यह क्रम चला आ रहा है । 'छिन्नमस्ता' की प्रिया अपने मित्र नरेन्द्र से कहती है, "यानी आपसी ईमानदारी, वफादारी, प्यार, समर्पण....यह सब कुछ नहीं ? ...कुछ नहीं ? सच कहूँ नरेन्द्र, ये शब्द भ्रम है । औरत को यह सब इसलिए सिखाया जाता है कि वह इन शब्दों के चक्रव्यूह से कभी नहीं निकल पाए ताकि युगों से चली आती आहुति की परंपरा को कायम रखे ।"[1] उपन्यास 'आवाँ' में उपन्यास की पात्रा वर्षा के अनुसार दूसरों की राय पर जीना, जीना नहीं है । व्यक्ति को अपनी मर्जी एवं मानसिकता के अनुसार ही जीना चाहिए । "औरों को मार गोली । कुआँ के मेढ़क वर्जना हीनता को बोल्ड की परिभाषा गढ़े हुए बैठे हैं । उनकी दूरबीन उनको मुबारक । अपने अनुभवों से तू अपनी परिभाषा गढ़ । आत्मविश्वास अर्जित कर । ये दीन हीनता झटक, उतार फेंक केंचुल ।"[2]

अतः समकालीन स्त्री पक्ष उपन्यास पुरुष विरोधी नहीं अपितु पुरुष वर्चस्व का विरोधी है । उसके 'पात्र' पुरुषों द्वारा निर्मित उन नियमों का विरोध करते है जो स्त्री को अपने अधीन रखने के लिए बनाये गए हैं ।

1.3.3.4 अस्मिता बोध

आधुनिक स्त्री प्रश्न करने वाली है । वह अन्याय, अत्याचार, अनाचार, शोषण जैसे सामाजिक बुराईयों के खिलाफ आवाज उठाती है । अपनी शर्तों पर ही वह जीना चाहती है । यह उसके आत्म बोध का ही परिणाम है । नारी का आत्म बोध उसे आश्रिता पत्नी से ऊपर उठाकर एक महात्वाकांक्षी और स्वाभिमानी नारी बना देता है । 'अपने अपने चेहरे' की रमा इतनी आत्मबल

---

1. खेतान, प्र. *छिन्नमस्ता.* पृ. 12
2. मुदगल, चि. *आवाँ.* पृ. 55

प्राप्त नारी है कि उसका विश्वास है कि पुरुष के बिना भी नारी एक पूर्ण इकाई है । 'पीली आँधी' की सोमा के लिए अपनी अस्मिता हीं सब कुछ है । स्त्री स्वतंत्रता का अर्थ मनमानापन नहीं है । अपितु वह किसी का दास बनकर जीना नहीं चाहती है । वह पुरुष विरोधी नहीं अपितु अत्याचार विरोधी है । नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास 'शाल्मली' के माध्यम से यही विचार व्यक्त किया है । उपन्यास की नायिका शाल्मली के मन मस्तिष्क में एक ऐसे समाज की कल्पना है, जहाँ कोई किसी का दास नहीं है, उसकी मानसिकता पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी है ।

अतः स्पष्ट है कि समकालीन उपन्यासों में स्त्री जीवन के बहुआयामी संदर्भों का खुलासा हुआ है । शिक्षित-अशिक्षित नारी कहीं न कहीं पीड़ित, शोषित एवं उपेक्षित है ।

1.3.4 समकालीन उपन्यास और दलित-विमर्श

भारत वर्ण व्यवस्था का देश है । यहाँ का समाज चार श्रेणियों - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में विभाजित है । वैदिक काल में यह वर्ण व्यवस्था नहीं थी । समाज में सभी व्यक्ति समान थे तथा अपनी इच्छा एवं रुचि के अनुसार काम करने को स्वतंत्र थे । बाद में जाति व्यवस्था स्थापित हो गई । जाति-भेद एक सामाजिक विकृति है जो मानवता के विरुद्ध है । जाति-भेद की भीषणता का शिकार समाज के निम्न जाति के ही लोग है जिन्हें दलित कहा जाता है । युगों से यह वर्ग उत्पीड़ित, उपेक्षित एवं शोषित रहा है । उन्हें शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा गया । आधुनिक संदर्भ में शिक्षित दलितों ने संगठित होकर इस अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाई । समकालीन दलित साहित्य इसी का परिणाम है । इसके मूल में विद्रोह की

भावना है । यह विद्रोह उस व्यवस्था के विरुद्ध है जिसने उन्हें मानवोचित् जीवन, समान अधिकार एवं अवसर से वंचित कर रखा है । स्वतंत्रता के बाद हमारे संविधान ने उन्हें सामाजिक स्तर पर युगों से चले आ रहे वंचित एवं शोषित वर्ग मान कर आरक्षण प्रदान किया है । उनकी मुक्ति को लक्ष्यकर मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति ही दलित साहित्य का उद्देश्य है ।

रमणिका गुप्ता कहती हैं- "एक समूह को अमीर, अभिजन, सवर्ण उच्च और श्रेष्ठ घोषित किया और दूसरे विशाल समूह को गरीब, नीच, हेय, घृणित, अस्पृश्य और निकृष्ट बनाया ।"[1] उनके अनुसार एक तबके को फल की आशा किये बिना कर्म करना सिखाया गया तो दूसरी ओर एक विशिष्ट वर्ग को श्रम से विमुख रखना और श्रम करने वालों से घृणा करना । श्रम करने वालों की जाति छोटी और श्रम न करने वालों की जाति बड़ी निर्धारित की गई । ब्राह्मण सिर्फ पठन-पाठन का कार्य करेगा । अगर वह हल छुएगा तो जाति से बहिष्कृत कर दिया जाएगा । वैश्य का कार्य व्यापार करना है, वह लड़ने वालों, पढ़ाने वालों की आर्थिक सहायता करेगा, खुद पढ़ेगा भी लेकिन शारीरिक श्रम नहीं करेगा । इस तरह सामाजिक दृष्टि से दलितों की स्थिति बिल्कुल प्रतिकूल थी । भारत में एक ओर जहाँ दलितों को देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना पड़ा तो वहीं दूसरी ओर जातीय भेद-भाव के खिलाफ भी ।

---

1. गुप्ता, र. *दलित चेतना, साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार.* पृ. 120-121.

1.3.4.1 दलित साहित्य

दलित साहित्य समकालीन भारतीय साहित्य की एक प्रमुख धारा है । भारत की प्रायः सभी भाषाओं में दलित साहित्य ने अपने नये अनुभव, नई अनुभूति, नई दृष्टि और विद्रोह से लोगों को अवगत कराया है । महाराष्ट्र की प्रख्यात दलित लेखक दया पवार के अनुसार दलित साहित्य का सूत्रपात महाराष्ट्र में हुआ । बाबा साहेब अंबेडकर इसके प्रेरणास्रोत थे । मराठी भाषा में लिखित डॉ. भीम राव अम्बेडकर की रचना 'मी कस झाला' वस्तुतः उनकी आत्मकथा है, जिसे पहली दलित रचना मानी गई है । शरण कुमार लिम्बाले, दया पवार, लक्षमण गायकवाड, लक्ष्मण माने जैसे प्रमुख मराठी दलित रचनाकार हैं ।

मलयालम दलित साहित्य भी काफी सम्पन्न है । पं. के. पी. करुप्पन, सहोदरन अय्यपन, वटुतला, कवियुर मुरली जैसे प्रख्यात रचनाकारों ने इस साहित्य को गति प्रदान की है । गुजराती में हरीश मंगलम्, दलपत चौहान, धरमा भाई झांभाली, डॉ. पथिक परमार, जयंत परमार जैसे उल्लेखनीय रचनाकारों ने अपना योगदान दिया है । आजकल सभी भारतीय भाषाओं में दलित रचनाओं का प्रकाशन होने लगा है । दलित साहित्य पर पाश्चात्य दलित चिंतन का काफी प्रभाव है । यद्यपि इनकी सामाजिक परिस्थिति अलग थी फिर भी दोनों संदर्भों में वर्ण व्यवस्था कुछ सीमाओं तक एक जैसी थी । हिन्दी के दलित साहित्य के मूल में यहाँ की धर्माश्रित वर्ण व्यवस्था है, तो अमेरिकी समाज के मूल में व्याप्त रंग-भेद । दोनों की परिस्थितियों में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य अलग-अलग है । पाश्चात्य वर्ण व्यवस्था में अस्पृश्यता का स्थान नहीं है । नीग्रो अस्पृश्य नहीं है । किन्तु

उनका शोषण अमानवीय ढ़ंग से होता आ रहा है । वे गुलाम थे । बाजार में जानवरों के जैसे उनकी खरीद-बिक्री होती थी ।

अमेरिकी नीग्रो साहित्य का आरंम्भ लोक साहित्य के माध्यम से हुआ है । अपने भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति उन्होंने इस साहित्य के माध्यम से किया है । १८५२ ई. में स्टीव ने नीग्रो के जीवन पर 'अंकल टॉस केबिन' नामक उपन्यास लिखा । यह एक बहुचर्चित उपन्यास था । १९०१ ई. में बुकर टी. वाशिंगटन ने 'अप फ्रेम स्लेवरी' नामक पुस्तक की रचना की जिससे काले समाज का सच उजागर हुआ । डब्ल्यू.ई. बी. डयूबाइस की ' द सोल ऑफ द ब्लैक फीक' नामक पुस्तक में श्वेत समाज के प्रति नीग्रो वर्ग की विद्रोही मानसिकता की अभिव्यक्ति है । इसके बाद इस समाज के लेखकों का आगमन हुआ । इस समाज के लेखकों ने अपनी लगन और निर्भीकता से अपने जीवन के अनुभवों को व्यक्त किया । १९६६ में नीग्रो युवकों ने 'ब्लैक पैंथर' नामक संगठन की स्थापना की । अमेरिका में दलित आन्दोलन को प्रश्रय देने में नीग्रो साहित्य और 'ब्लैक पैंथर' का योगदान सराहनीय है ।

1.3.4.2 हिन्दी दलित साहित्य

हिन्दी में दलित साहित्य की शुरुआत १९१४ में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित 'अछूत की शिकायत' नामक कविता से मानी जाती है । इसके रचनाकार हीरा डोम पहले आधुनिक दलित कवि माने जाते हैं । हिन्दी में दलित साहित्य का संबंध सिद्ध नाथों से रहा है । उस समय के रचनाकारों में कई दलित जाति के थे । उन्होंने जाति-व्यवस्था, अंधविश्वास, धार्मिक पाखंड आदि का विरोध अपनी रचनाओं के द्वारा किया । मध्य काल के संत साहित्य में भी इस चेतना का स्वर दिखाई पड़ता है । किन्तु दलित साहित्य की चर्चा आज

जिन संदर्भों में की जाती है, इसका आरंभ सत्तर-अस्सी दशक के दलित आन्दोलन एवं इससे उत्पन्न दलित साहित्य से है ।

दलित उपन्यासकारों द्वारा रचित उपन्यासों में दलित चेतना का सकारात्मक पक्ष देखा जा सकता है । मोहनदास नैमिषराय का 'मुक्तिपर्व', 'अपने-अपने पिंजरे', 'वीरांगना झलकारी बाई', ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'जूठन', जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर', 'करुणा', सत्यप्रकाश का 'जस तस भई सबेर', सूरजपाल चौहान का 'तिरस्कृत', प्रेम कपाडिया का 'मिट्टी की सौगन्ध' आदि हिन्दी के कुछ बहुचर्चित उपन्यास है । वस्तुतः दलित उपन्यास दलित जीवन का वास्तविक दस्तावेज है । इन उपन्यासों का मूल स्वर विद्रोह है ।

1.3.4.3 दलित उपन्यासों में विद्रोह

गैर दलित रचनाओं में प्रायः दलित पात्र अपने जीवन संघर्ष में पराजित होकर थक जाते हैं । वे निराश होकर उसे अपनी नियति मान कर विवश हो जाते हैं । पर दलित मानसिकता में ऐसा पराजय बोध नहीं है । उसमें विद्रोह एवं प्रतिरोध की भावना है । यही दलित साहित्य की जीवंतता एवं रोचकता है ।

प्रेम कपाडिया के उपन्यास 'मिट्टी की सौगन्ध' में जमींदार और दलित वर्ग के बीच के संघर्ष का वर्णन है । यह दलित समाज का अभिशाप है कि उसे अस्पृश्य माना जाता है । किन्तु जमींदार एवं समाज के तथाकथित संपन्न वर्ग के लोग दलित स्त्रियों के सम्मान को नष्ट कर डालते हैं । उन्हें स्वतंत्र जीवन जीने का कोई अधिकार नहीं है । अशिक्षा के कारण दलित संगठित नहीं है । अतः वे अत्याचार एवं अन्याय का विरोध नहीं कर पाते है । जयप्रकाश कर्दम के उपन्यास 'छप्पर' में दलित जीवन की विसंगतियों का वर्णन

है । चंदन इसका प्रमुख पात्र है । अपनी पढ़ाई के लिए वह शहर जाता है । वह अपने समाज के लोगों के प्रति दूसरों का व्यवहार देख कर आहत हो जाता है । उसका कथन "हम को पढ़ाने के लिए हमारे माता-पिता ने जो त्याग किए हैं उसकी सार्थकता इस बात में नहीं है कि हमलोग केवल अपनी ही उन्नति की ओर ध्यान दें । अधिक से अधिक पैसा कमाऐं तथा दूसरे लोगों की तरह वैभव विलासितापूर्ण जीवन बितायें ।"[1] उसके अनुसार हमें न सिर्फ अपनी उन्नति बल्कि अपने पूरे समाज की उन्नति एवं उत्थान पर ध्यान देना चाहिये । सदियों से गुलामी की जंजीरों में जकड़े हुए दलित समाज को भूख, गरीबी और लाचारी भरी जिन्दगी से मुक्ति दिलाने के लिए शिक्षा ही एकमात्र विकल्प है । सत्यप्रकाश का उपन्यास 'जस का तस भई सबेर' दलितों की विद्रोही मानसिकता की अभिव्यक्ति है । सरवन इस उपन्यास का पढ़ा-लिखा दलित पात्र है । अपने बड़े भाई हंसा द्वारा कर्ज लेकर जात लगाने की बात पर कहता है, "अरे हंसा मूर्ख मत बनो, दिमाग से काम लो, पूजा पाठ में कुछ नहीं रखा । इससे पुजारियों, भगतों और शोषकों को छोड़कर और किसी व्यक्ति को कोई लाभ आज तक नहीं हुआ है और न कभी होगा ।"[2] मोहनदास नैमिषराय का उपन्यास 'मुक्तिपर्व' भी दलित विद्रोह पर आधारित है । उपन्यास का माहौल भारत के स्वतंत्रता प्राप्ति का है । उपन्यास का मुख्यपात्र बंशी है । वह नबाब अली वर्दी खाँ का नौकर है । उसके मन में भी नया जोश एवं उमंग भर आया है । वह महसूस करता है कि अब वह गुलाम नहीं है । वह भी एक स्वतंत्र देश का एक स्वतंत्र नागरिक है । वह अपने मालिक से कहता है, "जनाबे आली, हम न

---

1. कर्दम, ज.प्र. *छप्पर*. पृ. 38.
2. सत्यप्रकाश. *जस तस भई सबेर*. पृ. 10.

गुलाम थे , न गुलाम है और न गुलाम रहेंगे ।"[1] ये शब्द दलितों के मन में युगों-युगों से संजोये स्वतंत्रता का प्रस्फुटन है । वह दलितों के मंदिरों में प्रवेश-निषेध को लेकर भी प्रश्न उठाता है कि आखिर दलितों के देवी-देवता कौन हैं ? वे किनकी पूजा करें ? क्योंकि उनके लिए न तो मंदिरों में ही प्रवेश है और न ही मस्जिदों में । आखिर वे भी तो इन्सान हैं, तो उन्हें फिर किस बात की सजा दी जा रही है ?

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने आत्मकथात्मक उपन्यास 'जूठन' में अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए कहते हैं, "अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते, बिल्ली, गाय, भैंस को छूना बुरा नहीं था लेकिन चुहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था । सामाजिक स्तर पर इन्सानी दर्जा नहीं था । वे सिर्फ जरुरत की वस्तु थे । काम पूरा होते ही उपयोग खत्म ।"[2] उनके अनुसार दलितों की एक अजीब सी यातनापूर्ण जिन्दगी थी, जिसके कारण उनका स्वभाव अन्तर्मुखी, चिड़चिड़ा और तुनक मिजाजी हो गया था । प्यास लगने पर स्कूल में जब वह हैंडपम्प छूते थे तो सहपाठी उनकी पिटाई करते थे और मास्टरजी से शिकायत करने पर सजा भी उन्हें ही मिलती थी ।

1.3.4.4 नारी शोषण

समकालीन दलित उपन्यास दलितों के शोषण के बहुआयामी यथार्थों को व्यक्त करता है । प्रेम कपाडिया के 'मिट्टी की सौगन्ध' में नारी के

---

1. मोहनदास, नै. *मुक्तिपर्व.* पृ. २८.
2. वाल्मीकि, ओ. प्र. *जूठन.* पृ. 12.

दैहिक शोषण का चित्रण है । जमींदार ठाकुर मदन सिंह एक दलित नवयुवती शीला से कहता है, "तू तो जवान छोकरी है री ! कमाल ! सुन्दर भी है...ताज्जुब है...तू आज तक हमारी सेज क्यों नहीं सजी ?"[1] वह उससे बलात्कार कर धमकी देता है कि अगर उसने इस बारे में कहीं भी कोई बात की तो उसे गोली से **उड़ा** देगा । "साली चमारिन होकर इतने नखरे दिखा रही है...।"[2] 'छप्पर' उपन्यास में भी नारी शोषण का वास्तविक चित्रण है । उपन्यास की पात्र कमला एक अछूत लड़की है । उसका मालिक अपने मित्रों के साथ मिलकर उसे बर्बाद कर देता है । जब कमला का पिता हरिया अपने मालिक से उसके इस कुकृत्य एवं अत्याचार के बारे में पूछता है तो उसका मालिक उसे धमकी देते हुए दो सौ रुपये दिखाकर कहता है, "यह लो और घर जाओ और जो हो गया उसे भूल जाओ ।"[3] हरिया के विरोध करने पर उसे पीटा गया । दलित साहित्यकार**ों** को कथा की तलाश में भटकने की जरुरत नहीं पड़ती है, क्योंकि उनके जीवन में अनन्त कथायें हैं जिसे उन्होंने पल-पल अनुभव किया है । अतः प्रायः सभी दलित उपन्यास आत्मकथात्मक है ।

1.3.4.5 धार्मिक शोषण

दलित अशिक्षित है । सही गलत को पहचानने की क्षमता उनमें कम होती है । अतः वे सवर्णों के शब्दों को बिना सोचे समझे एवं बिना जाँचे-परखे पूर्णतः सही समझ लेते हैं । सवर्ण समाज के तथाकथित सुसंस्कृत एवं सुसभ्य लोग उनकी इसी अज्ञानता का अनुचित उपयोग करते हैं ।

---

1. कपाडिया, प्रे. *मिट्टी की सौगन्ध.* पृ. 7.
2. कपाडिया, प्रे. *मिट्टी की सौगन्ध.* पृ. 7.
3. कर्दम, ज. *छप्पर.* पृ. 72.

'जस की तस भई सबेर' उपन्यास में धार्मिक शोषण का मार्मिक वर्णन है । इसका प्रमुख पात्र हंसा दलित एवं अशिक्षित है । वह अंध विश्वासों से भी ग्रस्त है । पंडित हरसन्ना भगत को ऐसे लोगों को फँसाने में महारत हासिल है । दलित और अशिक्षित हंसा जैसे व्यक्ति उनपर विश्वास करते हैं एवं पंडितों के झांसे में आ जाता है । पंडित के अनुसार हंसा की सारी कठिनाईयों एवं परेशानियों का कारण जाहरवीर की नाराजगी है । अतः वह हंसा को जात लगाने का उपदेश देता है । हंसा के कर्ज लेकर जात लगाने के बाबजूद भी उसके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं होता है तो पंडित कहता है कि जाहरवीर तुम्हारी जात से प्रसन्न नहीं हुए । क्योंकि "तुम्हारा भाई सरवन जाहरवीर को मानता नहीं, यह भी नहीं, वह गाँव के बाहर जाकर ऐसे अनिष्ट कराने के लिए तंत्र-मंत्र कर रहा है ।"[1] इस प्रकार पंडित दलितों का धार्मिक शोषण करने के साथ-साथ दो भाईयों के बीच मनमुटाव भी करवाने का काम करता है ।

1.3.4.6 प्रगतिशील चेतना

दलित उपन्यासों में प्रगतिशील विचारों का सक्रिय सान्निध्य है । इसमें एक ओर जहाँ सवर्णों की मानसिकता है, तो दूसरी ओर दलितों की बदलती हुई परिस्थिति एवं मानसिकता । 'मिट्टी की सौगन्ध' में शीला सवर्णों में होने वाले परिवर्तनों का दृष्टान्त है । प्रायः सभी दलित रचनाकारों की मान्यता है कि समाज में वर्तमान जाति भेद को मिटाना है । यह केवल दलितों और सवर्णों के संयुक्त प्रयास के द्वारा ही संभव है । विजेन्द्र एक ऐसा सवर्ण पात्र है जिसकी मानसिकता प्रगतिशील है । वह कहता है, "जब तक मेरी एक भी साँस बचेगी, दलितों और गरीबों को सामाजिक

---

1. सत्यप्रकाश. *जस की तस भई सबेर*. पृ. 36.

न्याय दिलाने के लिए संघर्ष करता रहूँगा ।"[1] उसी प्रकार कुछ दलित आधुनिक शिक्षा से संपन्न है तथा प्रगतिशील चेतना के संवाहक है । उनलोगों में सामाजिक सृजनात्मकता है । शीला, दारोगा, जगजीवन राम, न्याय सेना का नायक कालू पासवान आदि कुछ उल्लेखनीय पात्र है । यह दलितों में हुए परिवर्तनों को अंकित करते हैं । जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' में एक सवर्ण लड़की सुमेधा है जिसका दलित युवक शिवदास से प्रेम है । वह उसके हर संघर्ष में सहयोगी बनकर साथ रहने का निर्णय लेती है । सुमेधा जाति बंधन को पूर्णतः अस्वीकार करते हुए किसी भी परिस्थिति में शिवदास के साथ निर्वाह करने को तैयार है । उसके समक्ष अमीरी-गरीबी का भेद कोई मायने नहीं रखता । सुमेधा इस बात के लिए आश्वस्त है कि वह अपने माता-पिता को मना लेगी । वह कहती है - "मुझे केवल आपका सान्निध्य चाहिए । धन-दौलत का भरपूर स्वाद चखा है ।"[2] ओम प्रकाश वाल्मीकि के 'जूठन' में सभ्य समाज से यह पूछा गया है कि वक्त तो बदला है परंतु कुछ तो ऐसा है जो सहज नहीं होने देता है । आखिर सवर्णों के मन में दलितों, शूद्रों के लिए इतनी घृणा क्यों है ? "पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों को पूजनेवाला हिन्दू, दलितों के प्रति इतना असहिष्णु क्यों है ?"[3] वास्तव में यह प्रगतिशील मानसिकता का ही प्रमाण है ।

1.3.4.7 राजनीतिक स्वत्व

दलित सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित थे । वे सामाजिक,

---

1. कपाडिया, प्रे. *मिट्टी की सौगन्ध.* पृ. 61.
2. कर्दम, ज. *छप्पर.* पृ. 41
3. वाल्मीकि, ओ. प्र. *जूठन.* पृ. 21

आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों से दूर रखे गए थे । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी इन्हें उचित सम्मान नहीं मिला । अतः पिछड़े हुए लोगों को पुनः अपनी स्वतंत्रता एवं अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ा । "अधिकार कभी माँगने से नहीं मिलते हैं, अधिकार छीने जाते हैं । इसलिए अपने मानवीय अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष किया जाना चाहिए ।"[1] दलित अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए जिस राजनीतिक दल के साथ मिलकर संघर्ष करना चाहते हैं, वही राजनीतिक दल उन्हें अपना वोट बैंक समझकर अंधकार में ही रखते हैं । राजनीतिक दल इनकी समस्याओं को सुलझाने में कोई रूचि न रख इन्हें धोखे में ही रखना चाहते हैं । अतः कौशल्या वैसंत्री कहती हैं, "अगर हम स्वाभिमान से अपनी उन्नति करना चाहते है तब हमें अपने पाँव पर खड़े होकर, अपने पर भरोसा रखकर आगे बढ़ना होगा ।"[2] दलितों को अपने अन्दर की शक्ति को पहचान कर बिना किसी का सहारा लिए अपने समाज की उन्नति के लिए कार्य करना होगा ।

अतः दलित साहित्य और दलित आन्दोलन के पीछे दलित अस्मिता एक महत्त्वपूर्ण कारक है । दलित हर क्षेत्र में अपनी अस्मिता को प्रमाणित कर दिखाना चाहते हैं कि वे किसी भी काम में किसी से पीछे नहीं ।

*****

---

1. कर्दम, ज. *इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन.* पृ. 48.
2. वैसंत्री, कौ. *दोहरा अभिशाप.* पृ. 124.

1.4 संदर्भ ग्रंथ-सूची

आलोचनात्मक ग्रंथ

उतकर, ना. (2002). स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य और साहित्यकार. चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर.

एंगेल्स, फ्रे. (2003). *परिवार, निजि संपति और राज्य उत्पति*. प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली.

कर्दम, ज. (2006). *इक्कीसवीं सदी में दलित आंदोलन*. साहित्य संस्थान प्रकाशन, गाजियाबाद.

खान, एम. फि. (2012). साहित्य के आइने में *मुस्लिम विमर्श*. वांग्मय प्रकाशन, अलीगढ़.

खेतान, प्र. (2007). *भूमंडलीकरण : ब्रांड-संस्कृति और राष्ट्र*. सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली. ISBN 8171381308.

गुप्ता, र. (2004). *दलित चेतना, साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार*. समीक्षा प्रकाशन, गाँधी नगर, दिल्ली.

चव्हाण, अ. (2012) *समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष* . वाणी प्रकाशन, दरयागंज, नई दिल्ली.

तिवारी, रा. (2014). हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.

त्रिपाठी, स. (2000). हिन्दी उपन्यास *:* समकालीन विमर्श. अमन प्रकाशन, कानपुर.

नगेन्द्र. (2000) *हिन्दी सहित्य का इतिहास*. मयूर पेपर बैक्स, ए-95, सेक्टर-5, नोएडा 27वाँ संस्करण.

पान्डेय, सु. (1957). *हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास.* नवम भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.

मोहनन, एन. (2013). *समकालीन हिन्दी साहित्य.* वाणी प्रकाशन, दरयागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण.

राय, र. (2014). *हिन्दू-मुस्लिम रिश्तों के बहाने.* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण.

शुक्ल, रा. (2005). *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.

सिंह, पु. (1986). *समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ.* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण.

*****